International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(3): 15-19

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(3): 15-19
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 15-04-2022
Accepted: 22-05-2022

डॉ. प्रतिभा पुरन्धि
सहायक प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू, जम्मू और कश्मीर, भारत

Corresponding Author:
डॉ. प्रतिभा पुरन्धि
सहायक प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू, जम्मू और कश्मीर, भारत

सामवेद में अग्निविज्ञान

डॉ. प्रतिभा पुरन्धि

प्रस्तावना

सामवेद दो आर्चिकों में विभक्त है- पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिक में छह अध्याय और माहानाम्न्यार्चिक है जिनमें ६५० मन्त्र हैं। काण्डीय विभाजन के अनुसार पूर्वार्चिक में चार काण्ड हैं- आग्नेय, ऐन्द्र, पावमान और आरण्यक। आग्नेय काण्ड में ११४ मन्त्र हैं। इनमें पाँच मन्त्रों को छोड़कर शेष सभी मन्त्रों का देवता अग्नि है इसीलिए इसे आग्नेय काण्ड कहा जाता है।

अग्नि का मुख्यार्थ ईश्वर ही है। वेद, निरुक्त, उपनिषद्, मनुस्मृति, सर्वानुक्रमणी आदि ग्रन्थों में स्पष्ट लिखा है कि वेद में चाहे किसी भी देव का वर्णन हो और ईश्वर ही मुख्यरूप से अभिप्रेत है। तथापि 'अनन्ता वै वेदाः' के अनुसार अन्य अर्थों की उपेक्षा करना भी उचित नहीं जिनके माध्यम से वेदों से अनेक महत्त्वपूर्ण रहस्य जाने जा सकते हैं।

आज के वैज्ञानिक युग में सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व अग्नि ही है। हम आज प्रत्येक कार्य के लिए अग्नि के ही आश्रित हैं। वेद में भी अग्नि तत्त्व सबसे प्रमुख तत्त्व के रूप में वर्णित है। सामवेद में इसके कई नाम और रूपों का प्रतिपादन है।

पार्थिव अग्नि- पार्थिव अग्नि भी कई प्रकार की है- (क) और्वभृगु तथा (ख) अप्रवान् अग्नि

और्वभृगुवच्छुचिमप्रवानवदाहुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ।।[1]

अर्थात् आकाश में व्यापक शुद्ध अग्नि की और्वभृगु तथा अप्रवान् अग्नि के समान स्मरण करता हूँ। और्वभृगु अग्नि भूमि के भीतर सब पदार्थों में भर्जन या परिपाक करती है। अप्रवान् अग्नि रसों और ओषधियों में शान्तभाव से रहती है और रस अम्ल तथा क्षारयुक्त में प्रकट होती है।

जातवेदा अग्नि- केवल सूर्य ही नहीं अपितु यह अग्नि उदर में जठराग्नि, जल में वडवाग्नि, काष्ठ-धातु-पत्थर-पृथिवी के भीतर अनेक गैसों के रूप आदि में भी विद्यमान है। इसलिए अग्नि को जातवेदा अग्नि भी कहा गया। निरुक्तकार ने जातवेदा की निरुक्ति इस प्रकार की है- 'जातानि वैनं विदुः, जाते जाते विद्यते इति वा, जातवित्तो वा जातधनः, जातविद्यो वा जातप्रज्ञानः।[2] इन विग्रहों के अनुसार जिस अग्नि को हम सभी जानते हैं, जो सभी पदार्थों में

पाई जाती है, जिसे रगड़-मन्थन के द्वारा पाया जाता है, जिससे कार्य लेकर धन-ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति की जा सकती है, जो अन्धेरे में सब वस्तुओं को प्रकाशित करती है और जिसे पाने की चाह सभी मनुष्यों में रहती है वह अग्नि जातवेदा अग्नि है।

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इवेत्सुभृतो गर्भिणीभिः।
दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः।[3]

अर्थात् जातवेदा अग्नि गर्भधारण करने वाली स्त्रियों द्वारा उत्तम रीति से धारण किये हुए गर्भ के समान अरणियों में रहता है, वह हवियुक्त अग्नि अनुष्ठान में जागृत होकर नित्य स्तुत होता है।

अग्ने वाजस्य गोमत ईशान सहसो यहो।
अस्मे देहि जातवेदो महिश्रवः।।[4]

हे जातवेदा अग्नि ! तू गवादिधनयुक्त अन्न का स्वामी है। तू बल की सन्तान है अर्थात् बल से उत्पन्न होता है। हमारे लिए उत्तम धन वा अन्न प्रदान कर।

ईडिष्वा हि प्रतीव्या ३ यजस्व जातवेदसम्।
चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम्।। १.२.१.१.७ (१०३)

सामवेद में इस मंत्र में कहा गया है- हे मनुष्य! तू उस अग्नि के गुणों का प्रकाश कर जा प्रतीव्यम्- सबका उपकार करता है। जो जातवेदा है चरिष्णुधूमम्- जिसका धुआँ चतुर्दिक् व्याप्त हो रहा है। अगृभीतशोचिषम्- जिसके तेज से लोग अवगत नहीं।

द्रविणोदा अग्नि: धन और बल को द्रविण कहते हैं। अतः धन और बल देने वाली अग्नि को द्रविणोदा अग्नि कहा जाता है। निरुक्तकार ने कहा है- 'द्रविणोदाः कस्मात् ? ..... निगमो भवति । '(४.१. १) अर्थात् धन को द्रविण कहते हैं क्योंकि इसकी ओर सभी मनुष्य दौड़ते हैं। बल को भी द्रविण कहते हैं क्योंकि इसी के कारण मनुष्य दूसरों से मुकाबला करते हैं। अतः धन या बल के दाता को 'द्रविणोदस्' कहा जाएगा। शाकपूणि कहता है- यही अग्नि 'द्रविणोदस्' है क्योंकि आग्नेय सूक्तों में ही द्रविणोदस् के प्रयोग पाये जाते हैं।

सामवेद में इसका इस प्रकार से वर्णन है-

देवो वो द्रविणोदा पूर्णां विवष्ट्वासिचम्।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते।।[5]

अग्नि देवता तुम्हारी भरी हुई स्रुवा को स्वीकार करे। तुम उपपृणध्वं वा = तुम और भरो उत् सिञ्चध्वम् = ऊपर छोड़ो। अग्नि तुम्हारी आहुति को आत् इत् = तत्काल ही पहुँचाता है। अग्नि से ही शरीर में बल है। अग्नि से ही शिल्पी धन की प्राप्ति करते हैं इसलिए अग्नि को द्रविणोदा भी कहा जाता है।

वडवानल

समन्यायन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति ।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपान्त्रपातमुपयन्त्यापः।।
६.३.६ (६०७)।।

वृष्टि जल पृथिवी में गिरते हैं और भूमि के जल में मिल जाते हैं तब वह जल नदीरूप होकर समुद्र में स्थित वडवानल को तृप्त करते हैं। जलों के पौत्र अनल के निकट सभी शुद्ध जल प्राप्त होते हैं।

योगाग्नि

अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः।
अग्निमिन्धे विवस्वभिः ।।[6]

मनुष्य योगाग्नि को प्रदीप्त करता हुआ मन के साथ बुद्धि को संयुक्त करे और ज्ञान-ज्योतियों से अपने भीतर परमेश्वर को प्रकाशित करे।

अन्तरिक्षस्थ विद्युद्रूप अग्नि

प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध।।[7]

अग्नि महान् प्रकाश के साथ प्रकट होता है, द्यावा पृथिवी में यह बलवान् अग्नि गर्जन करता है। अन्तरिक्ष लोक के समीप से वह प्रकट हुआ और मेघों के बीच बढ़ने लगा।

प्र होता जातो महान्नभोविनृषद्मा सीददपां विवर्त्ते।
मनुष्यों के घरों में रहने वाला अग्नि पानी से भरे अन्तरिक्ष में विद्युत् रूप से रहता है।

द्युलोकस्थ अग्नि सूर्य

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्।।[8]

अन्धियारे को मिटाकर उस ज्ञान के प्रकाशक, अज्ञान के नाशक दिव्य आश्चर्यगणयक्त सूर्य को उसकी किरणें सबको देखने के लिए पहुँचाती हैं। अर्थात् सूर्य दूर होने पर भी अपनी किरणों द्वारा हममें व्याप्त होता है, प्रकाश करता है, ज्ञान को बढ़ाता है। इसी सूर्य का हम वर्णन करें, इसकी शक्तियों का विश्लेषण करें और इससे लाभ लें, इत्यादि वर्णन अग्रिम मन्त्रों में है-

कविमग्निमुपस्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे ।
देवममीवचातनम्।।

अर्थात् सबको जगाने वाले, नियम न डिगने वाले प्रकाशयुक्त रोगनिवारक सूर्याग्नि का अध्वरे = विज्ञानकाण्ड में वर्णन कर तेतीसवें मन्त्र में कहा है- अग्नि आदि की दिव्य शक्तियाँ जानी हुई हमको सब प्रकार सदा सुखदायिनी हो सकती हैं। इसके लिए हमको सूर्यादि देवों की क्या-क्या शक्ति- सामर्थ्य है इस बात को जानने के लिए उस उस पदार्थ के गुणों का वर्णन यजन-मिलान करना चाहिये।[9]

वैश्वानर अग्नि: आदित्य और विद्युत् से सम्बद्ध अग्नि को वैश्वानर अग्नि कहा जाता है। निरुक्तकार ने ७.६.२० में इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है- 'वैश्वानरः कस्मात् ? विश्वान्नरान् नयति, विश्व एनं नरा नयन्तीति वा अपि वा विश्वानर एव स्यात् प्रत्यृतः सर्वाणि भूतानि तस्य वैश्वानरः।' अर्थात् यह सब मनुष्यों को ले जाता है, सभी मनुष्य .इसे प्राप्त करते हैं। निरुक्त में पूर्व तथा उत्तर पक्ष प्रस्तुत करते हुए इसकी विस्तृत चर्चा की गई है। वहाँ कहा है- 'अयमेवाग्नि.. ..सम्पद्यते।' अर्थात् सूर्य और विद्युत् को विश्वानर कहा जाता है। 'विश्वानरस्य अपत्यम्- वैश्वानरः' सूर्य और विद्युत् से उत्पन्न होने वाली अग्नि वैश्वानर कही जाती है जब तक वैद्युत अग्नि मेघ में रहती है और जब तक वह मेघ से पृथक् होकर पृथिवी पर नहीं गिरती तब तक वह विद्युत् स्वभाव वाली रहती है। यह जल से प्रदीप्त होती है अर्थात् मेघ के घने होने पर ओर भी तेज हो जाती है और अन्य अन्य पार्थिव वस्तु को पाकर शान्त हो जाती है किन्तु यही विद्युत् जब किसी शुष्क वृक्ष पर गिरती है तो पार्थिव अग्नि बनकर जलने लगती है और जल से शान्त होती है।
सूर्योदय होने पर उसके फोकस से कंस मणि या सूखा गोबर आदि भी जलने लगते हैं। इस प्रकार सूर्याग्नि इन सब के माध्यम से पृथिवी पर लायी जा सकती है। आज सचमुच इन सौर ऊर्जा को कई प्रकार से एकत्रित कर इससे विविध कार्य लिये जा रहे हैं। सामवेद में भी कहा है-

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः।।[10]

विद्वान् ऋत्विज् लोग हमारे यज्ञ में पृथिवी से द्युलोक के ऊर्ध्व भाग को जाने वाले, दहकते हुए, सदा चलने वाले प्राणियों के रक्षक देवों के मुख वैश्वानर अग्नि को सब ओर से प्रकट करें।

दैवोदास अग्नि

प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना।
अनुमातरं पृथिवीं विवावृते नाकस्य शर्मणि ।।[11]

द्युलोक में उत्पन्न होने वाला अग्नि प्रकाशमान होकर सूर्य के समान समस्त प्राणियों की माता पृथिवी के चारों ओर बलपूर्वक छा जाता है और अन्तरिक्ष के आश्रय में स्थिर है। अर्थात् द्युलोक में बैठा हुआ सूर्य बड़े वेग से अपनी प्रकाश किरणों को पृथिवी पर भेजता है।
पं० तुलसीराम जी ने इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए लिखा है- 'पृथिवी में एक प्रकार की गरमी है जिसको वेद की भाषा में दैवोदास कहा है क्योंकि वह पृथ्वी से निरन्तर बाहर को निकलती रहती है और जिस प्रकार सूर्य की धूप पृथिवी के चारों ओर छाती है इसी प्रकार बिजली के बल से निकलकर वह भी अपनी माता पृथिवी के चारों ओर दूर-दूर द्युलोक के घर में अर्थात् द्युलोक रूप घर में स्थित है। और वर्षादि की हेतु है।' इस प्रसंग में तुलसीराम जी ने द्युलोक का भी अर्थ किया है 'पृथिवी के दूर चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश है वही द्युलोक है और उसमें वर्त्तमान समस्त दिव्य पदार्थ निरुक्त में

लिखे 'द्युस्थान देवता' हैं। सूर्य पृथिवी से बहुत बड़ा है पृथिवी उसकी अपेक्षा बहुत ही छोटी है इस कारण सूर्य से जो प्रकाश की धारा बहती है वे पृथिवी के छोरों को छूती हुई सुकड़ती-सुकड़ती चन्द्र से परे जिस बिन्दु- स्थान पर मिल जाएगी वही द्युलोक का आरम्भ है। बस इस दूरी से आगे पृथिवी के चारों ओर अन्धियारा नहीं है और वहाँ के स्थान को द्युलोक जानिए।[12]

यही दैवोदास अग्नि जब द्युलोक में पहुँचती है तो वह इन्द्र कहलाती है। और अपनी दिव्य शक्ति से वर्षा पैदा कर फसलों को बढ़ाने में सहायता करती है। तद्यथा अगले मन्त्रों में-

अध ज्मो अधवा दिवो बृहतो रोचना दधि।
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण।।[13]

अर्थात् हे इन्द्र ! तू ज्मः अधि= पृथिवी से ऊपर अधवा= और बृहतः रोचनात् दिवः अध= बड़े प्रकाशमान द्युलोक से नीचे इस विस्तृत शरीर से मेरी वाणी के साथ ही बढ़ और खेती को पुष्ट कर।

कायमानो वना त्वं.... भुवः।। अर्थात् हे दैवोदास अग्ने। जो तुम पृथिवी आदि से निकलकर प्रतिक्षण द्युलोक की ओर जाते हो वह मानो अपने कारण रूप विद्युत् में ऐसे जाते हो जैसे बालक उत्पन्न होकर फिर अपनी माता की ओर जाता है। क्योंकि 'न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्त्तनं यद्दूरे सन्निहा भुवः' तू जो विद्युत् रूप माता से दूर हो गया वह तुझसे सहन नहीं हो रहा।

निरुक्तकार ने उपर्युक्त मन्त्र में अग्नि की व्यापकता तथा अविनाशी रूप को दर्शाया है। निरुक्त (४.१४) तदनुसार अर्थ है- हे अग्ने ! जब तू वन, काष्ठ या जलरूप माताओं में शान्त होता हुआ लय हो जाता है तब तेरा मार्ग लुप्त नहीं होता क्योंकि तू दूर (नष्ट) होता हुआ भी फिर यहाँ अरणि अथवा मेघ में वह्नि या बिजली रूप में उत्पन्न हो जाता है।

अग्नि के अन्य रहस्य

अग्नि का वाणी से सम्बन्ध- वाणी का अग्नि के साथ गहरा सम्बन्ध है। यजुर्वेद में कहा गया है- 'मुखादग्निरजायत'। महाभारत के शान्तिपर्व (१८४.३२) में कहा गया है- 'शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च त्रिगुणं ज्योतिरुच्यते'। सामवेद में भी कहा गया है कि अग्नि से ही वाणी में सामर्थ्य बढ़ता है-

एह्यूषु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः।
एभिर्वर्धसि इन्दुभिः।।[14]

हे अग्ने ! तुम्हारे द्वारा ही मैं सभी वैदिक और लौकिक वाणियाँ बोलता हूँ। तुम इन यज्ञों से बढ़ते हो।

अग्नि के ही सहयोग से मन रूपी विद्युत् शरीर में फैलती है तभी बोलने का सामर्थ्य आता है। शिक्षा ग्रन्थ में कहा है-

आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ।।
मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम् ।

यही भाव अगले मन्त्र में प्रतिपादित है-

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात्। अग्ने त्वां कामये गिरा।।[15]

हे अग्ने ! वाणी सहित तुम्हें चाहता हूँ क्योंकि तुम से ही बोलने वाला मन रूपी विद्युत् पदार्थ उत्कृष्ट हृदय स्थान से फैलता है।

अग्नि के प्रकाश का वाहन आकाश-

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत ।
मूर्ध्ना विश्वस्य वाघत ।।[16]

हे अग्ने ! तुझको परमात्मा ने शिरः स्थानीय सबके अग्निजन्य प्रकाश के ले चलने वाले आकाश में ही प्रकट किया है।

अग्नि का वायु से सम्बन्ध-

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे।
मरुद्भिरग्न आ गहि ।।

हे अग्ने ! तू सुन्दर यज्ञस्थल में ऐश्वर्यपान के लिए बुलाया जाता है सो तू वायुओं के साथ आ। जब विद्युत् और वायु को संयुक्त किया जाता है तो उसका आश्चर्यजनक प्रभाव होता है। विना तार के वायु और अग्नि के संयोग से अनेक विलक्षण कार्य आज हो रहे हैं जिनसे ऐश्वर्य की वृद्धि हो रही है।

शत्रुओं का नाशक अग्नि- १.३.२ (२२) में बताया गया है- अग्नि में तीक्ष्ण तेज है जिससे विविध आग्नेयास्त्र बनाये जा सकते हैं जिनसे हिंसक शत्रुओं को भी निगृहीत किया जा सकता है।

यज्ञ के माध्यम से भी अग्नि में डाली हुई जड़ी बूटियां, ओषधियां घृतादि सूक्ष्म होकर पर्यावरण को शुद्ध करते हुए अनेको रोगां व कीटाणुओं के कुप्रभाव को समाप्त करती हैं। वृष्टि यज्ञ के माध्यम से वृष्टि में सहायिका होती हैं। पुत्रेष्टि में भी लाभप्रद है। इस प्रकार संसार के कण कण में अग्नितत्व है। यह एक महत्त्वपूर्ण भौतिक सर्वातिशय शक्तिशाली ऊर्जा है, जिसके सम्बन्ध में प्राचीनकाल से ही चिन्तन किया जा रहा है और इसे जीवन के लिए उपयोग में लाने के लिए अनेको प्रयास किए जा रहे हैं।

सन्दर्भ

1. साम० 1/3/8(18) 7/5
2. 7/5
3. साम० 1/8/7(79)
4. साम० 1/2/1/3 (99)
5. साम० 1/6/1 (55)
6. साम० 1/2/9 (19)
7. साम० 1/7/9 (71)
8. साम० 1/3/1(31)
9. सामवेद भाष्य पं० तुलसीराम।
10. साम० 1/75
11. साम० 51
12. सामभेदभाष्य।
13. साम॰ 52
14. साम॰ 1/1/7
15. साम॰1/1/8
16. साम॰1/1/1(9)